यज्ञ से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी

स्वामी यज्ञदेव | पतंजलि संन्यासाश्रम
पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार

यज्ञ को कैसे करना चाहिए? यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिए आवश्यक चीजों एवं आवश्यक ज्ञान का होना मनुष्य के लिए अति आवश्यक है। यदि यज्ञ करने या कराने में कोई त्रुटि भी रह जाती है तो वह यज्ञ पूर्ण नहीं माना जाता।

तो आईये! आपको हम यज्ञ को संपूर्ण यज्ञ बनाने के लिए कुछ आवश्यक जानकारी एवं दिशानिर्देश द्वारा समझाते हैं:-

यज्ञ कराने वाले ऋत्विज्-पुरोहितों की योग्यता

1. अच्छे विद्वान, धार्मिक, जितेन्द्रिय कर्म कराने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील होने चाहिए। (संस्कार विधि)
2. यजमान पत्नी और यजमान के वस्त्र उत्तम (शुद्ध) होने चाहिए।
3. वेदाध्ययन के लिए उपनयन की आवश्यकता है तो स्त्री को भी वेदाधिकार होने से यज्ञोपवीत का अधिकार है। (गो. गृह्य, 2.1.29)
4. आचमन क्रिया यज्ञ का प्रारम्भिक मुख्य कर्म है। बिना आचमन किए यज्ञकर्म करने से पवित्रता नहीं होती है। नित्य संध्योपासन, भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया करें। (संस्कार विधि)
5. '**ओम् यज्ञोपवीतम्**.....' इन मन्त्रों को बोलकर आचार्य (यज्ञोपवीत) धारण करावें। यज्ञोपवीत में तीन सूत्रों का प्रयोजन-प्रत्येक व्यक्ति तीन ऋणों से बँधा हुआ है। इनको उतारना प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है-

(1) विद्याध्ययन से ऋषिऋण दूर होता है।
(2) हवनादि शुभ-कर्म करने से देवऋण दूर होता है।
(3) माता-पिता, गुरु, आचार्य व अन्य वृद्धजनो की सेवा करने से पितृऋण दूर होता है।

यज्ञोपवीत में ब्रह्मग्रन्थि का प्रयोजन है

ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली गाँठ। ईश्वर-प्राप्ति मानव का परम लक्ष्य

है, यह ग्रन्थि (गाँठ बांध लेना) इसका स्मरण कराने के लिए है। यज्ञोपवीत के तीन धागे ब्रह्मग्रन्थि द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। यह इस बात का ज्ञान कराता है कि मनुष्य, ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों को साथ-साथ प्राप्त करें तथा यज्ञोपवीत के तीनों धागे क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और ग्रन्थि अथर्ववेद का प्रतीक है।

यज्ञपात्र सुवर्ण, चाँदी, कांसा, तांबा आदि धातु के अथवा काष्ठ (लकड़ी) के हों।

समिधाएँ

चन्दन की अथवा पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्ब आदि वृक्ष की होनी चाहिए। परन्तु कीड़ा लगी हुई, मलिन, देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों, अच्छे प्रकार से देख लेना चाहिए। (संस्कार विधि)

तीन समिधाओं से तात्पर्य तीन ऋणों से उऋण होना है

ब्रह्मचारी मानो तीन समिधाओं के द्वारा तीनों लोकों को पालित-पूरित करता है, पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्षस्थ ज्ञान को मानो वह अपने में भर लेता हो।

'ओम् अयन्त इध्म आत्मा' से पाँच घृताहुतियाँ क्यों?

वैदिक संस्कृति में तीन संख्या के समान पाँच की संख्या का भी विशेष महत्त्व है। जैसे पाँच प्राण हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ हैं, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच महाभूत। यजमान पाँच घृताहुतियाँ देते हुए इन पंचकों को ध्यान रखें। जैसे घृताहुति से अग्नि प्रदीप्त होती है, वैसे ही इन पंचकों को हमें अपनी ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त करना है तथा इनका अपने जीवन में यथायोग्य उपयोग करना है। मन्त्र में प्रज्ञा, पशु, ब्रह्मवर्चस्, अन्नादि पदार्थ तथा इसके अतिरिक्त जो प्रार्थनाएँ हैं ये पाँच हैं, इसलिए मन्त्र पाँच बार पढ़ा जाता है।

यज्ञकुण्ड की तीन सीढ़ियाँ तीन आश्रमों का प्रतीक हैं

अग्निकुण्ड पर बनी चारों ओर की तीन-तीन सीढ़ियाँ, तीन आश्रमों का प्रतीक हैं। प्रथम सीढ़ी ब्रह्मचर्याश्रम की प्रतीक है, दूसरी सीढ़ी गृहस्थ का तथा तीसरी सीढ़ी वानप्रस्थ का। कुण्ड की अन्दर अग्नि तो है ही मूर्त्त संन्यास। वह उसका ध्येय है। संन्यासी होने का अर्थ है- सर्वमेध यज्ञ करना, अग्निमय हो जाना।

स्वाहाकार

स्वाहा शब्द के उच्चारण पर ही आहूति दी जाती है **मन्त्रान्ते स्वाहाकारः** इति गोभिल, स्वाहा का निर्वचन निरुक्त (8.20) में दिया है- **'स्वाहेत्येतत् सु आहेति'**- जो सुन्दर कथन, वचन हो उसे 'स्वाहा' कहते हैं तथा स्वाहा- स्व=अपना अंहकार, आह=त्याग करना, इसलिए मन्त्र के साथ स्वाहा शब्द का प्रयोग किया जाता है। स्वाहा की ध्वनि सार्वजनिक यज्ञों में केवल यजमान या ऋत्विजों के ही नहीं, अपितु सभी को उच्च स्वर से करनी चाहिए। **स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्** (यजु. 6.16) अर्थात् स्वाहा की ध्वनि करने पर आकाश में ऊपर वायु की गति हो। स्वाहा की क्रिया देवों की वृद्धि उन्नति निमित्त होती है, क्योंकि **स्वाहाकृते हरिरदन्तु देवाः** (यजु.) स्वाहापूर्वक आहुति देने पर देव उस हवि को ग्रहण करते हैं।

मौन आहुतियाँ

(1) ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा (2) ओम- प्रजापतेय स्वाहा। ये दो मौन आहुतियाँ हैं। यज्ञ में जितनी भी क्रियाएँ की गई हैं, उसे मन में विशेष रूप से चिन्तन किया जाना चाहिए। मन और वाणी में कौन श्रेष्ठ है, मन जिनको नहीं सोचता उसे वाणी कहने में असमर्थ रहती है, अतः मन ही वाणी से श्रेष्ठ है। प्रजापति परमात्मा ने उपासना कार्य में वाणी से अधिक मन को समर्थ माना है। अतः यज्ञादि कार्य में बाह्यक्रियाओं के साथ मन का भी योग आवश्यक है।

यज्ञ में पत्नी का स्थान

यज्ञ कर्म में पत्नी का स्थान दक्षिण भाग में नियत है। विवाह संस्कार में पत्नी दक्षिण भाग में बैठती है, इसके अपवाद रूप में गर्भाधान, नामकरण और निष्क्रमण में पत्नी को वामभाग में बैठने का विशेष विधान है।

इदं न मम

यज्ञ का प्राण यह वाक्य है। यह मेरा नहीं है। घृत, सामग्री आदि द्रव्य की आहूति यज्ञ में दी जाती है। यह पदार्थ हमारे नहीं हैं, जिसका अंश था उस ईश्वर को समर्पित कर दिया। आज जब प्रत्येक मेरा, मेरा के उलझन में फँसा हुआ है और हर समस्या 'मेरा' के कारण ही बनी हुई हो, तब मेरा नहीं का संदेश मानव समाज के लिए एक अद्भूत तथा अपूर्व संदेश है।

दक्षिणा

यह की दक्षिणा देना यज्ञ की 'भेषज क्रिया' है, जिससे यज्ञ समृद्ध या सफल होता है, इसलिए ऋत्विजों को यज्ञ में दक्षिणा दी जाती है।